भ्रष्टाचार

समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य

योगेश अटल

भ्रष्टाचार और उसे पानी देने वाली जटिल प्रक्रिया आम तौर से समाजशास्त्रीय चिंतन के केंद्र में नहीं रही है। दरअसल भ्रष्टाचार पर मिलने वाला अधिकतर लेखन उसके उजागर होने पर रचा गया है, और उसके प्रभावों की ओर ही इंगित कर पाता है। इससे संदेश यही मिलता है कि भ्रष्टाचार अवांछित है, और इसका निराकरण होना चाहिए। लेकिन समाज-चिंतन में ऐसे साहित्य का अभाव है जो इसके उदय और प्रसार की प्रक्रिया का वस्तुपरक अध्ययन करता हो। सरकारी आँकड़े और निरीक्षकों की रपटें इस कमी को पूरा नहीं कर सकतीं। समाज-विज्ञान को इसके अध्ययन के लिए नयी तकनीक का विकास करना होगा। सर्वेक्षण की पद्धति इसके लिए उपयुक्त नहीं है। पर्यवेक्षण में कई बाधाएँ हैं। स्थिति यह है कि भ्रष्टाचार पर अनुसंधान करने के सर्वांग परिप्रेक्ष्य का भी अभाव है। वरिष्ठ समाजशास्त्री योगेश अटल ने अपनी इस संक्षिप्त टिप्पणी में इस कमी की भरपाई करने के लिए कुछ शुरुआती प्रस्तावनाएँ की हैं।

पिछले कुछ वर्षों से भ्रष्टाचार की समस्या सभी समाजों का ध्यान खींचने लगी है। लोगों के आचरण को नियमित करने के लिए प्रत्येक समाज की अपनी एक संस्कृति विकसित होती है। उचित-अनुचित, भला-बुरा, वांछित और अवांछित संस्कृति के अनुसार परिभाषित होते हैं। लोगों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे समाज द्वारा निर्धारित आदर्शों के अनुरूप व्यवहार करेंगे। ज़ाहिर है कि आदर्शों की यह व्यवस्था सामाजिक नियंत्रण में योगदान देती है। समाजीकरण के माध्यम से ही मनुज जैव-पशु से सामाजिक प्राणी बनता है। दरअसल, संस्कृति एक सीखा हुआ व्यवहार है और इसका निहितार्थ यह है कि जो सीखा हुआ है उसे

मैंने उसे विलिंग सस्पेंशन ऑफ़ ग्रीफ़ अर्थात डब्ल्यूएसजी कहा है। जैसे नाटक में डब्ल्यूएसडी होता है— विलिंग सस्पेंशन ऑफ़ डिसबिलीफ़, वैसे ही डब्ल्यूएसजी है। नाटक में जो रंगमंच पर घटित होता है वह हम जानते हैं कि यथार्थ नहीं है फिर भी हम उस पर विश्वास कर लेते हैं, इसी प्रकार भ्रष्टाचार की पीड़ा से ग्रसित होने पर भी हम उसे सार्वजनिक नहीं होने देते। हम रिश्वत देते हैं, पर रिश्वत का भंडाफोड़ नहीं करते। और रिश्वत का धन कई तरीकों से श्याम से श्वेत हो जाता है।

भूला भी जा सकता है या भुलाया भी जा सकता है, और नया कुछ सीखा या सिखाया भी जा सकता है। शिक्षण की इस प्रक्रिया में लोग आदर्श के उच्च शिखर तक पहुँचने का प्रयास करते हैं और इसमें हमेशा भटकाव की सम्भावना भी बनी रहती है। कुछ लोग पिछड़ जाते हैं, या पथ भ्रष्ट हो जाते हैं। फिर होड़ लगती है ऊँचा उठने की। इस दृष्टि से लक्ष्य-सिद्धि में सहायक हो सकने वाले माध्यम अपनाये जाते हैं। पर ये माध्यम सदैव सर्वमान्य नहीं होते। इसे ही आचरण का भ्रष्ट होना, पथ का भटकाव, विपथगमन आदि की संज्ञा दी जाती है। और जब यह विपथगमन अधिक होने लगता है तो उसके कारण समाज की भित्तियाँ ढहने लगती हैं। सामाजिक विघटन उसका ही परिणाम है। समाजशास्त्रीय साहित्य के प्रारम्भिक काल में समाजवेत्ताओं ने ज़्यादा ध्यान इस पर दिया कि समाज बनता कैसे है और उसकी संरचना के क्या तत्त्व हैं? इसी कारण शुरुआती रचनाओं में सामाजिक परिवर्तन पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। ढाँचागत और प्रकार्यात्मक प्रश्नों की गूढ़ता को ही समझने की चेष्टा की गयी और सामाजिक विघटन रोकने की नियंत्रण-प्रणाली पर विचार किया गया। इस सब में भ्रष्टाचार के जिस स्वरूप की व्याख्या की गयी वह व्यक्तिगत अपराधों और पारस्परिक संबंधों में पड़ने वाली दरारों तक ही सीमित रहा। परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार की प्रक्रिया समाजशास्त्रीय चिंतन के केंद्र में नहीं आ पायी।

इस सीमा के बावजूद यह सभी ने स्वीकार किया कि भ्रष्टाचार प्रत्येक समाज में व्याप्त है— चाहे वह लघु समुदाय हो या बृहद समाज; पारम्परिक हो या अधुनातन, पाश्चात्य हो या तीसरे विश्व का सदस्य। किन्तु भिन्न समाजों में जिन कृत्यों को भ्रष्टाचार की संज्ञा दी जाती है वे एक से नहीं होते क्योंकि भ्रष्ट व्यवहार को समाज की संस्कृति द्वारा परिभाषित आदर्श व्यवहार का विलोम माना जाता है। सैद्धांतिक दृष्टि से ऊँचे धरातल पर भ्रष्टाचार को आदर्श और अपेक्षित व्यवहार के विपरीत माना जा सकता है। ऐसा व्यवहार क्यों होता है? कैसे पनपता है? इसका वर्गीकरण किस प्रकार किया जाए? ये प्रश्न बहुत कुछ अनुत्तरित ही हैं।

समाजशास्त्री परिप्रेक्ष्य में भ्रष्टाचार को समझने के लिए यह मान कर चलना होगा कि भ्रष्टाचार एक अपरिहार्य प्रक्रिया है जो सार्वभौम है। किसी एक प्रकार के आचरण को, या किसी एक व्यक्ति या समूह में प्रचलित आचरण को बदला जा सकता है, पर उसका यह अर्थ कदापि नहीं कि किसी दूसरे श्रेष्ठ में, या अन्य व्यक्तियों या समूह में, अथवा अन्य स्वरूप में उसकी आवृत्ति नहीं हो सकती। लेकिन, इस मान्यता का यह अर्थ नहीं लगाया जाए कि समाज-विज्ञान भ्रष्टाचार का पक्षधर है। भ्रष्टाचार का वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य तैयार करने में जो कठिनाइयाँ रही हैं, वे इस प्रकार हैं :

1. यह कई दृष्टियों से गुप्त व्यवहार है। इसकी प्रत्यक्ष गवेषणा नहीं की जा सकती।

2. भ्रष्टाचार उन क्षेत्रों में पनपता है जो सामाजिक निगरानी के दायरे से बाहर होते हैं।

3. भ्रष्टाचार से पीड़ित व्यक्ति उसे उजागर करने से सकुचाते हैं और जानबूझ कर उसे झेलते हैं और उसका दुराव करते हैं। अंग्रेज़ी में मैंने उसे विलिंग सस्पेंशन ऑफ़ ग्रीफ़ अर्थात डब्ल्यूएसजी कहा है। जैसे नाटक में डब्ल्यूएसडी होता है— विलिंग सस्पेंशन ऑफ़ डिसबिलीफ़, वैसे ही डब्ल्यूएसजी है। नाटक में जो रंगमंच पर घटित होता है वह हम जानते हैं कि यथार्थ नहीं है फिर भी हम उस पर विश्वास कर लेते हैं, इसी प्रकार भ्रष्टाचार की पीड़ा से ग्रसित होने पर भी हम उसे सार्वजनिक नहीं होने देते। हम रिश्वत देते हैं, पर रिश्वत का भंडाफोड़ नहीं करते। और रिश्वत का धन कई तरीक़ों से श्याम से श्वेत हो जाता है।

4. भ्रष्टाचार से आम आदमी का पीड़ित होना और समस्त समाज को विशाल स्तर पर हानि होना दोनों का बोध होता है। लेकिन आम आदमी डब्ल्यूएसजी के कारण उस पर पर्दा डाल देता है। व्यापक स्तर पर भ्रष्टाचार करने वाले समाज के क़ायदे-क़ानून पर पर्दा डाल कर उसे आम आदमी के लिए आदर्शनीय बना देते हैं।

भ्रष्टाचार : एक सम्बोध

हम भ्रष्टाचार को सामाजिक विपथगमन का विस्तारित स्वरूप मान सकते हैं। सामाजिक विपथगमन सामान्यकों (जो लक्ष्य और उनकी प्राप्ति के माध्यम नियत करते हैं) और वास्तविक व्यवहार के बीच अंतर्विरोध का द्योतक है। इस अंतर्विरोध से वे ऐसे रोगों को जन्म भी दे सकते हैं जिससे पूरी समाज-व्यवस्था ही हिल जाए। विपथगमन का यह दूसरा प्रकार ही भ्रष्टाचार है जो सामाजिक लक्ष्यों और व्यक्तिगत लक्ष्यों के बीच टकराव का सूचक है।

अंग्रेज़ी में भ्रष्टाचार के लिए करप्शन शब्द का प्रयोग होता है जो लैटिन भाषा के शब्द करप्टियो की व्युत्पत्ति है और जिसका अभिप्राय नैतिकता का ह्रास, सड़ना, सामान्य स्तर से नीचे गिरना, स्थिति का बिगड़ना आदि है। ऑक्सफ़र्ड डिक्शनरी में इसे सार्वजनिक क्षेत्र में विश्वसनीयता का लोप, रिश्वतखोरी और पक्षपात कहा गया है। यह अस्वीकरणीय व्यवहार है।

इतना होते हुए भी यह ऐसा मिला-जुला व्यवहार प्रतीत होता है कि यकायक इसे भ्रष्ट नहीं कहा जा सकता। सार्वजनिक और राजकीय क्षेत्र में भ्रष्ट पदाधिकारियों को कौटिल्य ने 'मत्स्य' कहा है। 'जैसे गहरे पानी में रहने वाली मछली पानी पीती है या नहीं पीती, इसका पता लगाना कठिन है, वैसे ही सरकारी कर्मचारी ने पैसे चुराये या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता।' कौटिल्य ने इस कठिनाई को ऐसे भी व्यक्त किया 'जैसे जबान पर लगे शब्द या ज़हर का स्वाद लेना असम्भव है वैसा ही सरकारी नौकर का राजकोष से थोड़ा सा धन न चुराना भी है।' आज के युग में जब राजा-महाराजा नहीं रहे, तो अब न केवल ऊँचे सरकारी अधिकारी वरन नेता और मंत्रीगण भी इसका आस्वाद लेने से नहीं चूकते। पाँच वर्ष की अवधि के लिए चयनित राजनेताओं के लिए तो यह ऐसा अवसर है कि जितना हो सके लूट लो, फिर पता नहीं चुने जाएँ या नहीं।

बढ़ते हुए भ्रष्टाचार से न केवल लालफ़ीता-शाही से त्रस्त जनता अपना आक्रोश व्यक्त करने लगी है, बल्कि परोक्ष रूप से सरकारी धन लूटने वाले बड़े अफ़सरों और नेताओं पर भी उँगली उठाने लगी है। भ्रष्टाचार के दुष्परिणामों की गिनती की जाने लगी है। उनमें से मुख्य ये हैं :

1. भ्रष्टाचार के विश्वव्यापी दुष्परिणाम हुए हैं जो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक असंतोष के जन्मदाता हैं।

2. भ्रष्टाचार न केवल ग़रीबी का मूल कारण है, बल्कि वह ग़रीबी निवारण में एक बड़ी बाधा भी है।
3. भ्रष्टाचार के प्रसार से मानवाधिकारों का हनन होता है।
4. भ्रष्टाचार जनतंत्र विरोधी है।
5. भ्रष्टाचार से राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय व्यापार कुप्रभावित होता है।
6. भ्रष्टाचार से दु:शासन पनपता है।
7. भ्रष्टाचार से देशी और अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा को ख़तरा है और इसका नतीजा प्राकृतिक संसाधनों के शोषण में निकलता है।

भ्रष्टाचार पर अधिकांश लेखन उसके उजागर होने पर रचा गया है, और उसके प्रभावों की ओर इंगित करता है। संदेश यही मिलता है कि यह अवांछित है, और इसका निराकरण होना चाहिए, किन्तु ऐसे साहित्य का अभाव है जो इसके उदय और प्रसार की प्रक्रिया का वस्तुपरक अध्ययन करता हो। सरकारी आँकड़े और निरीक्षकों की रपटें इस कमी को पूरा नहीं कर सकतीं। समाज-विज्ञान को इसके अध्ययन के लिए नयी तकनीक का विकास करना होगा। सर्वेक्षण की पद्धति इसके लिए उपयुक्त नहीं है। पर्यवेक्षण में कई बाधाएँ हैं।

सार्वजनिक और राजकीय क्षेत्र में भ्रष्ट पदाधिकारियों को कौटिल्य ने 'मत्स्य' कहा है। 'जैसे गहरे पानी में रहने वाली मछली पानी पीती है या नहीं पीती, इसका पता लगाना कठिन है, वैसे ही सरकारी कर्मचारी ने पैसे चुराये या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता।' कौटिल्य ने इस कठिनाई को ऐसे भी व्यक्त किया 'जैसे ज़ुबान पर लगे शब्द या ज़हर का स्वाद लेना असंभव है वैसा ही सरकारी नौकर का राजकोष से थोड़ा सा धन न चुराना भी है।'

सामाजिक संबंधों की दृष्टि से देखें तो इसमें तीन भूमिकाएँ प्रमुख होती हैं : भ्रष्ट व्यक्ति, भ्रष्ट करने वाला, और भ्रष्टाचार का शिकार या पीड़ित। ये तीनों भूमिकाएँ विश्लेषण के लिए आवश्यक हैं। लेकिन ये साथ-साथ भी पायी जाती हैं। जैसे भ्रष्टाचार का शिकार व्यक्ति स्वयं ही भ्रष्टाचार का जन्मदाता हो सकता है, या फिर भ्रष्ट व्यक्तियों की सोहबत एक कारण हो सकती है जिसमें फँसने वाले को भी भ्रष्ट होना पड़ सकता है। इसी प्रकार जो भ्रष्टाचार से पीड़ित होता है उसे स्वयं ही किसी अन्य को भ्रष्ट करना पड़ता है ताकि उसके स्वार्थ की सिद्धि हो सके। यह स्वार्थ-सिद्धि भी दो प्रकार की होती है : एक तो वह जो अपने आप में लक्ष्य होती है जैसे पासपोर्ट का बनवाना, लाइसेंस लेना; दूसरी वह जो लक्ष्य सिद्धि का माध्यम होती है। उदाहरण के लिए पेट्रोल पम्प के लाइसेंस के लिए एक व्यक्ति सरकारी अधिकारियों को रिश्वत देता है, पर वह रिश्वत का पैसा उसे पीड़ा नहीं पहुँचाता, वरन रिश्वतदाता के लिए वह उसके व्यापार की लागत का एक अंश होता है। यह लागत पेट्रोल पम्प लग जाने पर ब्याज स्वरूप लागत से कहीं अधिक लाभ पहुँचाती है। यह बीच का पैसा दलाली को भी बढ़ावा देता है और इस प्रकार रिश्वत की प्रक्रिया में मध्यस्थों की क़तार सी बन जाती है। अंग्रेज़ी राज्य में सरकार स्वयं अपने अधिकारियों को ठेकेदारों से रिश्वत लेने के लिए प्रेरित करती थी और यह पैसा नीचे

के कर्मचारी वसूल कर ऊपर के अधिकारियों तक बँटवारे के किसी फ़ार्मूले के तहत पहुँचाते थे। इस प्रकार औपचारिक तंत्र के साथ-साथ रिश्वत का अनौपचारिक तंत्र भी चला करता था। वही परिपाटी आज भी क़ायम है। विकास के लिए जिलों और ब्लॉकों तक पहुँचा हुआ पैसा एक निश्चित प्रतिशत में सरकारी अधिकारियों के पास वापस लौटता है और चपरासियों और खंड विकास अधिकारियों से लेकर सीधे मंत्री तक उसका आनुपातिक बँटवारा होता है। राजीव गाँधी ने जब यह कहा कि विकास के लिए आबंटित एक रुपये का दस से बारह प्रतिशत ही विकास पर खर्च होता है तो उसके पीछे उनका यही आशय था।

अब जब हम सरकारी पैसे और रिश्वत की बात कर ही रहे हैं तो हमें भ्रष्टाचार के वर्गीकरण पर भी ध्यान देना चाहिए। जैसा हम कह ही चुके हैं कि भ्रष्टाचार एक सार्वभौम विपथगमन है जो समाज के हित में नहीं हो सकता। अनिष्टकारी (जिसे अ-प्रकार्यात्मक भी कहा जाता है) परिणाम वाले कृत्य ही भ्रष्टाचार की श्रेणी में आते हैं और ये समाज के हर पहलू और दायरे में पाये जाते हैं।

भ्रष्टाचार व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह द्वारा किया जाता है। नैतिक दृष्टि से भ्रष्टाचार व्यक्ति के आचरण से संबंधित होता है जिसे अनाचार या दुराचार या पाप की संज्ञा भी दी जाती है। आज जिस भ्रष्टाचार का ज़िक्र किया जा रहा है वह सरकार और प्रशासन से जुड़ा भ्रष्टाचार है। इसके दो पक्ष हैं :

(1) कुशासन और

(2) सार्वजनिक सम्पत्ति और धन-राशि का निजी हितों के लिए दोहन एवं शोषण।

कुशासन से आम व्यक्ति को पीड़ा पहुँचती है। कार्य-कुशलता का अभाव इसका एक लक्षण है : निर्णय में विलम्ब, जन-सुविधाओं की देख-रेख और प्रबंधन में ढील, सरकारी कर्मचारियों द्वारा प्रत्येक कार्य के लिए ली जाने वाली ज़बरन रिश्वत इसके उदाहरण हैं। जब आम आदमी किसी सरकारी कामकाज में उलझता है तभी उसे इसका आभास होता है। तब लोग उसे यह दिलासा दिलाते हैं कि यही वास्तविकता है, इसे स्वीकारो। इसीलिए असुविधाओं से पीड़ित होते हुए भी वह कुछ कर नहीं पाता। वस्तुस्थिति से समझौता कर लेता है और डब्ल्यूएसजी आश्रय लेता है। लोगों के मन में पनप रहा असंतोष और आक्रोश तब तक दबा रहता है जब तक कि कोई जयप्रकाश नारायण या अन्ना हज़ारे जैसा व्यक्ति उसे सामूहिक आक्रोश में बदल कर आंदोलन का आह्वान नहीं करता।

सार्वजनिक सम्पत्ति का दोहन ऊँचे स्तरों पर होता है और उसकी दर्शनीयता पर कई प्रकार के आवरण पड़े होते हैं। आवरणों का उद्घाटन इतना सहज नहीं होता, पर जब होता है तो आँखें फटी रह जाती हैं। जन-आक्रोश में ऐसे रहस्योद्घाटन आहुति की भूमिका निभाते हैं। भ्रष्टाचार की चरम सीमा के रूप में प्रभावित करने वाले ऐसे कृत्य ही आंदोलन की प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हैं।

भ्रष्टाचार के उदय के कई माध्यम हैं। जब हम इसे विपथगमन मानते हैं तो उसका अभिप्राय है कि समाज द्वारा प्रस्तावित और निर्देशित पथ से भटकाव। समाजशास्त्री *रॉबर्ट मर्टन* ने इसे उस पथ

अंग्रेज़ी राज्य में सरकार स्वयं अपने अधिकारियों को ठेकेदारों से रिश्वत लेने के लिए प्रेरित करती थी और यह पैसा नीचे के कर्मचारी वसूल कर ऊपर तक के अधिकारियों तक बँटवारे के किसी फ़ार्मूले के तहत पहुँचाते थे। इस प्रकार औपचारिक तंत्र के साथ-साथ रिश्वत का अनौपचारिक तंत्र भी चला करता था। वही परिपाटी आज भी क़ायम है।

के साथ अनुकूलन की प्रक्रिया का अंग बताया है। जैसा हम पहले कह आये हैं प्रत्येक समाज के अपने सांस्कृतिक लक्ष्य होते हैं और साथ ही उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अपनाये जाने वाले उचित माध्यम भी। जब उचित माध्यमों से लक्ष्यों की प्राप्ति होती है तो उसे अनुरूपता या संगति कहा जा सकता है। बाकी सभी प्रयास असंगति के द्योतक हैं। इन्हें निम्न तालिका में दर्शाया गया है :

व्यवहार में संगति और असंगति

प्रकार	संगति का प्रकार	सांस्कृतिक लक्ष्य	संस्थागत साधन
I	अनुरूपता / पूर्ण संगति	+	+
II	नवाचार	+	+
II	कर्मकांड	–	–
IV	अपावर्तन (रिट्रीट)	–	–
V	विद्रोह	±	±

रॉबर्ट मटर्न द्वारा प्रस्तावित वर्गीकरण

उपरोक्त वर्गीकरण में भ्रष्टाचार का सीधा उल्लेख नहीं है। पर मुख्यत: वह नवाचार और कर्मकांड का अंग है। जब लक्ष्यों को मान्यता देते हुए भी उन्हें प्राप्ति के निदेशित तरीक़ों से भिन्न मार्ग अपनाया जाता है तो वह विपथगामी व्यवहार ही होता है। एक कुशल प्रशासनिक अधिकारी जब यह पाता है कि प्रचलित नियम और क़ानून लक्ष्य–प्राप्ति में बाधा डाल रहे हैं तो वह जान बूझ कर उन नियमों की अवहेलना करता है और नये ढंग से कुशलता–पूर्वक लक्ष्य–सिद्धि का मार्ग अपनाता है। यदि वह लक्ष्य सिद्धि सामाजिक दृष्टि से हितकारी है तो उसका यह प्रयास एक नवाचार माना जाएगा; और यदि इससे लक्ष्यों को, या समाज को क्षति पहुँचती है तो उसकी निंदा की जाएगी। इस दृष्टि से नवाचार एक प्रकार का प्रवेशार्थी है। पर जब ऐसा नवाचार व्यक्तिगत लाभ के लिए किया जाए, या सार्वजनिक हित की पूर्ति कम व्यय में करते हुए लाभ–राशि को अपने हित के लिए चुरा लिया जाए तो फिर ऐसा कृत्य भ्रष्टाचार की श्रेणी में आता है। स्थिति कौटिल्य की उसी मछली की भाँति है जो पानी में है और उसे पीती भी है। अब कितना पानी स्वयं के लिए पीना उचित है और कितना अनुचित यह विवाद का विषय ही है। बड़े–बड़े घोटाले जो आजकल उजागर हो रहे हैं उनका उद्‌गम यहीं से होता है।

कर्मकांड से अभिप्राय हमारा नियमबद्धता से है। जब अधिकारीगण नियमपूजक हो जाते हैं, और उस दौर में इन लक्ष्यों को भूल जाते हैं जिनकी प्राप्ति हेतु माध्यम रूप में उन नियमों को ढाला गया था, तो वह स्थिति अंधानुकरण की हो जाती है। कई बार जानबूझ कर नियमों की आड़ लेकर बाधाएँ भी खड़ी की जाती हैं। नियमों के लचीलेपन को ताक़ में रख दिया जाता है। आम आदमी जब सरकार से जुड़े अपने निजी हितों के लिए दफ़्तरों का चक्कर लगाता है तो इन्हीं नियमों की आड़ में उसे प्रताड़ित होना पड़ता है। अपना काम निकलवाने के लिए उसे रिश्वत का मक्खन चटाना पड़ता है। इस सबसे एक ओर तो आम व्यक्ति को कष्ट झेलने पड़ते हैं, और रिश्वत न देने पर उसका काम भी अटका पड़ा रहता है, पर साथ ही कार्यालय की कार्यकुशलता पर भी असर पड़ता है। जो नियम कुशलता और प्रभावात्मकता बढ़ाने के लिए बनाये जाते हैं, उन्हीं का अंधानुकरण विपरीत परिणाम देने लगता है।

भ्रष्टाचार से मुक्ति पाने के लिए जब भी सरकार क़दम उठाती है तो उसमें अधिकांश ऐसे होते हैं जो प्रचलित नियमों और कार्य-पद्धतियों से संबंधित नहीं होते। भ्रष्टाचारी को दंड देना या घोटालों की जाँच करना एक बात है और भ्रष्टाचार को प्रश्रय देने वाले जो ढाँचागत कारक हैं, उनकी जाँच करना और उनमें आवश्यक सुधार लाना दूसरी बात है। इस पक्ष पर ध्यान नहीं जाता। जाँच की विधि और जाँचकर्ता वही होते हैं, जिनके होते हुए भ्रष्ट आचरण प्रश्रय पाता है। यही बड़ी विडम्बना है। सामाजिक शोधकर्त्ताओं को भ्रष्टाचार से जुड़े अनुसंधान में इस बात का ध्यान रखना होगा और ऐसी तकनीकें निकालनी होगीं जो इन पक्षों को भी देख-परख सकें।

भ्रष्टाचार पनपता क्यों है?

लेख के शुरुआती हिस्से में हमने इस प्रश्न का आंशिक उत्तर दिया है। हमने कहा है कि लक्ष्यों और लक्ष्य-पूर्ति के माध्यमों के बीच पनपने वाले असंतुलन से भ्रष्टाचार का उदय होता है। कुछ विद्वान यह भी मानते हैं कि भ्रष्टाचार का संबंध समाज की संस्कृति से जुड़ा हुआ है। उनके तर्क का आधार यह तथ्य है कि संसार के विभिन्न देशों को भ्रष्टाचार की दृष्टि से अलग-अलग श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है और इस दृष्टि से कुछ समाज भ्रष्टाचार-मुक्त और कुछ समाज भ्रष्टाचार-लिप्त के रूप में सामने आते हैं— इन दो परस्पर विरोधी ध्रुवों के बीच ही अधिकांश समाजों को रखा जाता है। तर्क यह दिया जाता है कि कुछ समाजों में भ्रष्टाचार की परम्पराएँ रही हैं या उपनिवेशवादी सरकारों ने भ्रष्टाचार को फैलाया है, इसलिए परम्परावादी और विदेशियों के दास रहे समाजों में भ्रष्टाचार का आधिक्य है और उससे मुक्ति प्राप्त करने का माध्यम उनका आधुनिकीकरण ही हो सकता है। इसके विपरीत यह तर्क भी दिया जाता है कि आधुनिक समाज भी भ्रष्टाचार से सर्वथा मुक्त नहीं है। प्रौद्योगिकी के विकास से आज ऐसे बड़े और भारी घोटाले सम्भव हैं जिनकी पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी और ये सब पढ़े-लिखे लोग करते हैं।

भ्रष्टाचार के पनपने के अन्य जो कारण गिनाये जाते हैं, वे इस प्रकार हैं :-

1. प्रणाली में भ्रष्टाचार को पकड़ न पाने और भ्रष्ट व्यवहार के लिए दंड देने की असमर्थता।
2. भ्रष्टाचार पीड़ित द्वारा अपनी व्यथा का अप्रसार अर्थात डब्ल्यूएसजी की प्रवृत्ति।
3. छोटे-मोटे घोटालों की प्रणाली द्वारा अनदेखी।
4. नियमों और कार्यप्रणाली के भिन्न-भिन्न अर्थ लगाना अर्थात उनके अभिप्रेत के विषय में मतभेद।
5. नियमों की लीपा-पोती, जो ऊपर से लगे कि नियम का पालन किया गया है पर उसकी आड़ में नियमों का उल्लंघन।
6. नियमों के लचीलेपन को नज़रअंदाज़ कर उनकी कठोरता से पालन करने की चेष्टा।
7. पदाधिकारियों के अपने व्यवहार से होने वाला भ्रष्टाचार का पोषण।
8. कार्यालय में पदाधिकारियों की कमी, गोपनीयता के नियम और प्रणाली के दोष के कारण भ्रष्टाचार को मिलने वाला बढ़ावा।
9. भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने में निजी क्षेत्र की बड़ी कम्पनियों का भी हाथ रहता है जो घूस के रूप में अफ़सरों और मंत्रियों को भारी राशि देती हैं ताकि उसके एवज में उनसे अपना काम निकलवाया जा सके। उनके लिए यह पैसा देना डब्ल्यूएसजी का अंग नहीं है, वरन यह उनकी लागत का एक भाग है जो अंततः क्रेताओं से वसूल लिया जाता है।

भ्रष्टाचार के इन विभिन्न पक्षों का विवेचन कर लेने के बाद अब हम इस स्थिति में हैं कि उसका संक्षिप्त स्वरूप प्रस्तुत करें।

भ्रष्टाचार के लक्षण

मलेशिया के समाजशास्त्री सैयद हुसैन अलातास ने भ्रष्टाचार के निम्नलिखित लक्षणों का उल्लेख किया है :

1. भ्रष्टाचार में एक से अधिक व्यक्ति सम्मिलित होते हैं। अकेले व्यक्ति द्वारा किया हुआ व्यवहार धोखाधड़ी की श्रेणी में आता है।
2. साधारणत: भ्रष्टाचार गोपनीयता की आड़ में किया जाता है। अर्थात यह छिप कर किया जाने वाला ऐसा अपराध है जो साधारणत: लोगों की नज़रों में नहीं आता।
3. भ्रष्टाचार में पारस्परिक लाभ का आदान–प्रदान होता है।
4. भ्रष्ट व्यवहार की पद्धति अपनाने वाले लोग उसके न्यायसंगत होने के दावे पेश करते हैं।
5. भ्रष्टाचार का कोई भी कृत्य विश्वसनीयता पर एक आक्षेप होता है।
6. इसी प्रकार इस कृत्य के दो पक्ष होते हैं
   (1) सौंपे गये कार्य का सम्पादन
   (2) व्यक्तिगत स्वार्थ की आपूर्त्ति

लाइसेंस को ही लीजिए— लाइसेंस देना सरकारी अधिकारी का कर्म है, पर उसके लिए रिश्वत लेना स्वार्थपूर्त्ति; इसी प्रकार लाइसेंस की अर्ज़ी देना नागरिक का अधिकार है पर उसको पाने के लिए रिश्वत देना ग़ैर–क़ानूनी। इस दृष्टि से लाइसेंस पाना न्यायसंगत है, पर उसे पाने के लिए पर्दे के पीछे की सारी कार्रवाई अनैतिक और भ्रष्टाचारी है। एक भ्रष्ट व्यवहार अपने कर्त्तव्य और दायित्व के नियमों का उल्लंघन है और इसलिए वह नागरिकता सम्मत व्यवहार नहीं है।

भ्रष्टाचार में एक से अधिक व्यक्ति सम्मिलित होते हैं। अकेले व्यक्ति द्वारा किया हुआ व्यवहार धोखाधड़ी की श्रेणी में आता है। भ्रष्टाचार गोपनीयता की आड़ में किया जाता है। अर्थात यह छिप कर किया जाने वाला ऐसा अपराध है जो साधारणत: लोगों की नज़रों में नहीं आता।

भ्रष्टाचार के राजकीय कार्यों में कई स्वरूप देखने को मिलते हैं। जैसे :

1. परिचितों को लाभ पहुँचाना या क्रोनीइज़्म
2. भाई–भतीजावाद या नेपोटिज़्म
3. संरक्षण या पेट्रोनिज़्म
4. भीतर ही भीतर लेन–देन या इनसाइडर ट्रेडिंग
5. सुविधा शुल्क या स्पीड मनी
6. गबन या घोटाला
7. सार्वजनिक सम्पदा का दुरुपयोग

भ्रष्टाचार उन्मूलन के अंतर्राष्ट्रीय प्रयास

2004 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा प्रकाशित एक पुस्तिका में भ्रष्टाचार को सुशासन से जुड़ी समस्या माना गया है जो प्रजातंत्र के लिए एक चुनौती के समान है। भ्रष्टाचार की वृद्धि इस बात का संकेत है कि प्रभावी शासन के लिए निर्मित संस्थाएँ असफल हो रही हैं और पारदर्शिता का अंत हो रहा है।

पिछले कुछ वर्षों में भ्रष्टाचार की समस्या पर लोगों का ध्यान काफ़ी जाने लगा है। समस्या इतनी गहन और व्यापक है कि इसकी चर्चा और इससे निबटने के प्रयास अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी होने लगे हैं। आर्थिक विकास के बावजूद भी सामाजिक विकास के क्षेत्र में बड़ी ख़ामियाँ हैं जो बढ़ती हुई ग़रीबी, बेरोजगारी और सामाजिक विघटन की प्रवृत्तियों में प्राय: सभी देशों में परिलक्षित हो रही हैं। ऐसी अवस्था में सुधार लाने के लिए सुशासन अर्थात् 'गुड गवर्नेंस' की आवश्यकता पर बल दिया जाना चाहिए। विश्व बैंक के नेतृत्व में संयुक्त राष्ट्र संघ की विभिन्न संस्थाओं के प्रतिनिधि अधिकारियों का एक दल गठित किया गया। इस दल से यह अपेक्षा की गयी है कि वह सुशासन की परिभाषा तैयार करे और सुशासन के उदाहरण, जहाँ से भी उपलब्ध हों, एकत्र करे और उनके व्याख्यापूर्ण वर्णनों को वितरित करे ताकि अन्य देश भी उनका अनुपालन कर सकें।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र ने भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए कई महत्त्वपूर्ण क़दम उठाये हैं। उदाहरण के लिए संयुक्त राष्ट्र के नशीली दवाओं और अपराध से संबंधित कार्यालय ने भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक वैश्विक कार्यक्रम प्रारम्भ किया है जिसके अंतर्गत संयुक्त राष्ट्र संघ के भ्रष्टाचार के विरुद्ध कन्वेन्शन को कार्यान्वित करने में सदस्य देशों को सहायता प्रदान की जाती है। गैर-सरकारी संगठनों के स्तर पर ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल नामक संस्था सक्रियता से भ्रष्टाचार के मामलों को उजागर करती है। इसी प्रकार और भी कई एनजीओ हैं जैसे— ग्लोबल इंटेग्रिटी, ग्लोबल विटनेस, रेवेन्यू वॉच इंस्टीट्यूट, टीरी और ग्लोबल आर्गेनाइजेशन ऑफ़ पार्लियामेंटेरियंस अगेंस्ट करप्शन। इसी प्रकार राष्ट्रीय स्तर पर भी कई ग़ैर-सरकारी संगठन भ्रष्टाचार के विरुद्ध अभियान चला रहे हैं।

भ्रष्टाचार और मानवाधिकारों के हनन का परिप्रेक्ष्य

मानवाधिकारों की सूची में ऐसा कोई भी अधिकार नहीं है जो स्पष्टत: भ्रष्टाचार के विरुद्ध हो। किन्तु भ्रष्टाचार के कारण जब व्यक्ति का कोई मानवाधिकार छिनता है तो फिर उस दृष्टि से ऐसे विशिष्ट भ्रष्टाचार को रोकना आवश्यक हो जाता है।

यदि न्यायपालिकाओं में भ्रष्टाचार फैलने लगता है तो फिर उससे न्याय मिलने के अधिकार पर असर पड़ सकता है। यदि सरकारी अस्पतालों में डॉक्टर और अन्य कर्मचारी धनी व्यक्तियों से पैसा लेकर उनके उपचार को प्राथमिकता देते हैं तो ग़रीब व्यक्ति को उपेक्षा भोगनी पड़ती है। यदि सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा ग़रीबों को वितरित किया जाने वाला अनाज ज़्यादा पैसे लेकर समृद्ध वर्ग में बेच दिया जाता है तो दरिद्र वर्ग के मानव अधिकार पर चोट पहुँचती है। यही बात शिक्षा के क्षेत्र में भी लागू होती है। भ्रष्ट समाज में, अर्थात ऐसे समाजों में जहाँ सरकारी कामकाज में भ्रष्टाचार चरम सीमा पर पहुँच चुका है, सरकार लोगों के मानवाधिकारों की रक्षा करने में अपने को असमर्थ पाने लगती है, यह सही है कि भ्रष्टाचार की निरंतर वृद्धि से अंतत: मानव-अधिकारों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, किन्तु यह कहना गलत होगा कि भ्रष्टाचार का प्रत्येक कृत्य मानव अधिकार का उल्लंघन है। इसलिए हमें भ्रष्टाचार व उनके कृत्यों को चिह्नित करना होगा जिनके कारण मानव-अधिकारों का सीधा उल्लंघन होता है। साथ ही उन कृत्यों को अलग श्रेणी में रखना होगा जिनके कारण मानव अधिकार अंतत: प्रभावित हो सकते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर समस्त सदस्य राष्ट्रों से अपेक्षा की जाती है कि वे मानवाधिकारों से सम्बद्ध अपने दायित्वों का निर्वाह करें। सरकारों के इस संदर्भ में तीन दायित्व हैं— (1) मानव अधिकारों के सम्मान का दायित्व, (2) मानव अधिकारों की रक्षा का दायित्व और (3) मानव अधिकारों को पूरा करने का दायित्व। जिस किसी भ्रष्टाचारी कृत्य से मानव अधिकारों की हत्या होती है, या उनका अनादर होता है उन पर रोक लगाना किसी भी सरकार का दायित्व बनता है। साथ ही उसका यह भी

दायित्व है कि यदि मानव अधिकारों की रक्षा के लिए नये विधि-विधान की आवश्यकता हो तो उन्हें वह पारित करे और उनके पालन की उचित व्यवस्था करे।

प्रत्यक्ष अवहेलना

उदाहरण के लिए, किसी भी न्यायमूर्ति को दी जाने वाली घूस उस पदासीन व्यक्ति की स्वतंत्रता और निष्पक्षता को प्रभावित करती है और उससे उचित न्याय के अधिकार को चोट पहुँचती है। इसी प्रकार जब किसी व्यक्ति को उसके अधिकार से वंचित किया जाता है, अर्थात मार्ग में बाधाएँ खड़ी की जाती हैं, तो वह भी सीधा मानवाधिकार पर प्रहार है। शिक्षा का अधिकार या स्वास्थ्य का अधिकार तब छिन जाता है जब एक शिक्षार्थी को स्कूल या कॉलेज़ में प्रवेश पाने के लिए गुप्त रूप से या संस्थागत चंदे के रूप में (जिसे कैपिटेशन फ़ी या प्रति व्यक्ति अनुदान कहा जाता है) एक सुनिश्चित राशि देने को बाध्य किया जाता है। ऐसी स्थिति में प्रवेश का आधार व्यक्ति की अध्ययन क्षमता न होकर उसकी पैसे देने की क्षमता हो जाती है। यही बात स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी है। सरकारी अस्पतालों की कुव्यवस्था और समुचित उपचार की सुविधाओं के अभाव के कारण जब एक ग़रीब व्यक्ति को प्राइवेट अस्पतालों में अधिक धनराशि जुटा कर उपचार के लिए जाने को बाध्य होना पड़ता है तो वह भी एक प्रकार से स्वास्थ्य संबंधी उसके मानवाधिकार का हनन ही है। सरकारी अस्पतालों में डॉक्टरों द्वारा गुप्त रूप से ली जाने वाली फ़ीस भी 'घूस' का ही एक स्वरूप है। इसी प्रकार सरकारी अस्पतालों के कर्मचारी मुफ़्त में उपलब्ध करायी जाने वाली दवाइयों को भी चोरी से केमिस्टों को बेच देते हैं और इस कारण उनके अभाव में एक सामान्य वर्ग के रोगी को मजबूरन बाज़ार से उन्हीं दवाइयों को महँगे भावों में खरीदना पड़ता है। कई बार डॉक्टर लोग औषधि निर्माता कम्पनियों के साथ साँठगाठ करके ऐसी दवाइयाँ लेने की राय देते हैं जो महँगी होती हैं, जबकि कम दामों वाली उन्हीं लवणों वाली दवाइयों से काम चल सकता है और जो सरकारी अस्पतालों में मुफ़्त में मुहैया करवायी जाती हैं।

जनता की जागरूकता बढ़ने के कारण अब उपचार और चिकित्सा के मामलों में लापरवाही बरतने वाले डॉक्टरों और अन्य स्वास्थ्यकर्मियों के ख़िलाफ़ लोग कोर्ट-कचहरियों में जाने लगे हैं। जहाँ इस जागरूकता से स्वास्थ्य के मानवाधिकार को थोड़ी-बहुत मज़बूती मिली है, वहीं इसके कुछ अनपेक्षित परिणाम भी सामने आये हैं। डॉक्टर लोग अपने को क़ानूनी दाँव-पेचों में फँसने से बचाने के लिए अब कई प्रकार की जाँच प्रयोगशालाओं में कराने के लिए ज़ोर देने लगे हैं। निस्संदेह प्रौद्योगिकी के विकास के साथ कई ऐसी मशीनें आयी हैं जिनसे रोगों के सही निदान में भारी सहायता मिलती है, पर कई सामान्य रोगों के लिए इतनी खर्चीली जाँच की आवश्यकता नहीं होती। पर अपने बचाव के लिहाज़ डॉक्टर लोग सभी तरह की जाँच प्रस्तावित करते हैं जिससे उपचार में समय और व्यय दोनों ही बढ़ जाते हैं। इस नये व्यवहार से जहाँ डॉक्टर अपने को थोड़ा सुरक्षित अनुभव करते हैं, वहीं प्रयोगशालाओं के माध्यम से उन्हें कमीशन मिलने से उनकी आय भी बढ़ने लगी है। इस सब में पिसता है मध्यम और निम्न वर्ग का परिवार, जिसे उपचार के बढ़ते हुए व्यय का भार झेलना पड़ता है। एक मरीज़ की दृष्टि से ये नये और महँगे उपचार उसके बजट को प्रभावित करते हैं और खर्च न कर पाने की स्थिति में उसके स्वास्थ्य के अधिकार से भी उसे वंचित करते हैं। दूसरी ओर, चिकित्सा व्यवसाय की दृष्टि से शोध की नयी उपलब्धियाँ ऐसे रोगों का इलाज करने में समर्थ हुई हैं जिन्हें पहले भगवान भरोसे छोड़ दिया जाता था। आज उपचार महँगा हो गया है और मध्यम वर्ग एवं निम्न वर्ग का व्यक्ति अपने दैन्य और दारिद्र्य के कारण उसका लाभ उठाने में स्वयं को असमर्थ पाता है। ऐसी स्थिति में शिक्षा के अधिकार की तरह ही स्वास्थ्य के अधिकार का भी लाभ आम आदमी तक नहीं पहुँच पाता है। दोनों ही क्षेत्रों में प्रचलित भ्रष्टाचार ने अध्यापक और चिकित्सक की

सम्मानित स्थिति और उससे जुड़ी भूमिकाओं को बदल सा दिया है। ये भूमिकाएँ समाज सेवा से हट कर व्यावसायिक बनती जा रही हैं।

परोक्ष अवहेलना

मानव अधिकारों की परोक्ष अवहेलना में ख़ासतौर पर ऐसे भ्रष्टाचार का हाथ रहता है जिसकी आवृत्ति होने पर ही मानवाधिकार प्रभावित होते हैं। एक उदाहरण, जिसका बार-बार ज़िक्र आता है, उद्योगीकरण से जुड़ा है। सरकारी अफ़सरों को घूस देकर उन्नत देश अपना टॉक्सिक वेस्ट (विषाक्त कूड़ा-करकट) विकासशील देशों को निर्यात कर देते हैं और ऐसा कूड़ा कई बार बस्तियों के इर्द-गिर्द डाल दिया जाता है। ऐसे कूड़े से निकलने वाली ज़हरीली गैसों से वहाँ के निवासी प्रभावित होते हैं और कई रोगों के शिकार हो जाते हैं। इस दृष्टांत में रिश्वत को सीधे-सीधे अधिकारों के हनन से नहीं जोड़ा जा सकता लेकिन रिश्वत ऐसे मामलों में एक आवश्यक कारक तो है ही।

इसी श्रेणी में हम इन मामलों को भी रख सकते हैं जिसमें भ्रष्ट अधिकारी पैसा लेकर भ्रष्टाचार की वारदातों को सार्वजनिक रूप से उद्घाटित नहीं होने देते। कॉमनवेल्थ खेलों के आयोजन से जुड़े अथवा टू-जी स्पेक्ट्रम की निविदा से संबंधित काग़ज़ातों को घूस लेने वाले अधिकारियों ने जिस तरह छुपा कर रखा वह सूचना के अधिकार को खंडित करता रहा।

यहाँ हम भ्रष्टाचार से प्रभावित होने वाले मानवाधिकारों को चिह्नित करने की चेष्टा करेंगे।

असमानता और भेदभाव न करने के सिद्धांत

भेदभाव कई तरह से किया जा सकता है : जैसे बहिष्कार, प्रवेश पर रोक, वर्गीकरण, अथवा पक्षपात। ये भेदभाव नस्ल, धर्म, व्यवसाय, जाति अथवा लिंग के आधार पर किये जाते हैं। इन आधारों पर किया जाने वाला किसी भी तरह का भेदभाव तभी मानवाधिकार के विरुद्ध होता है जब उससे पीड़ित व्यक्ति का सामाजिक स्तर घटे या फिर उसके कारण उसे उसके अन्य मानवाधिकारों से वंचित किया जाए। सुविधा-शुल्क के रूप में गुप्त अर्थात मेज़ के नीचे से दी जाने वाली घूस दूसरों के मानवाधिकारों का हनन तभी करती है जब उन्हें भी पैसा देने के लिए विवश किया जाए। कई लोगों का मानना है कि जिस घूस से दूसरों का नुक़सान न हो, केवल अपना काम जल्दी से और आसानी से निकल जाए, वह सभ्य है। किन्तु यदि इसके कारण अन्य लोगों को कष्ट हो और अनधिकृत बिचौलियों का सहारा लेना पड़े तो अवश्य ही वह अधिकार के हनन की श्रेणी में रखा जाएगा।

मानव अधिकारों की परोक्ष अवहेलना में ख़ासतौर पर ऐसे भ्रष्टाचार का हाथ रहता है जिसकी आवृत्ति होने पर ही मानवाधिकार प्रभावित होते हैं। सरकारी अफ़सरों को घूस देकर उन्नत देश अपना टॉक्सिक वेस्ट विकासशील देशों को निर्यात कर देते हैं और ऐसा कूड़ा कई बार बस्तियों के इर्द-गिर्द डाल दिया जाता है। इससे निकलने वाली ज़हरीली गैसों से वहाँ के निवासी प्रभावित होते हैं और कई रोगों के शिकार हो जाते हैं। इस दृष्टांत में रिश्वत को सीधे-सीधे अधिकारों के हनन से नहीं जोड़ा जा सकता, लेकिन रिश्वत ऐसे मामलों में एक आवश्यक कारक तो है ही।

जब समुचित न्याय मिलने के अधिकार का खंडन हो

न्यायालयों और न्यायाधीशों को दी जाने वाली रिश्वत को इस श्रेणी में रखा जाता है। सेवा-निवृत्त हुए एक आई.ए.एस. अधिकारी सुधीर वर्मा ने राजस्थान के दैनिक *राष्ट्रदूत* में प्रकाशित अपने लेख में इसका उल्लेख किया। इसे प्रस्तुत करना यहाँ बड़ा संगत लगता है :

> जब मेरी प्रथम नियुक्ति ब्यावर में उप ज़िला अधिकारी के रूप में हुई थी तो मेरे न्यायालय की फ़ाइलों को एक मुंशी सँभालता था। मुझे वह बहुत मुस्तैद लगता था, क्योंकि दिन भर में हुए कोर्ट आदेशों को वह शाम तक फ़ाइलों में लिख कर मेरे सामने हस्ताक्षर करने के लिए पेश कर देता था। बाद में मुझे पता चला कि वह वकीलों से मिला हुआ था और वकील की इच्छानुसार पेशी देने के लिए पैसा वसूल करता था।

इन्होंने एक दूसरा उदाहरण भी प्रस्तुत किया है जो सरकारी लाइसेंस से जुड़ा हुआ है :

> ... मैं भारत सरकार के वाणिज्य मंत्रालय में नियुक्त हुआ जहाँ भारत के सब बड़े-बड़े उद्योगपति चक्कर लगाते थे। मेरा कार्य था कि आयात के हर प्रार्थना-पत्र को मैं निर्णय के लिए एक कमेटी के सामने प्रस्तुत करूँ। ये बहुत ही रुटीन कार्य लगता था। एक दिन मैंने देखा कि मेरे कार्यालय का एक कर्मचारी, जिसका काम इन फ़ाइलों की जाँच करके प्रस्तुत करना था, एक बहुत बड़ी गाड़ी में अपने घर की ओर प्रस्थान कर रहा था। पता चला कि वह रोज़ बड़ी-बड़ी गाड़ियों में दफ़्तर आता था और शाम को उद्योगपतियों की इन्हीं गाड़ियों में बैठ कर घर वापस जाता था। जो भी उद्योगपति उसे पैसा देता था उसकी पत्रावली पर वह बहुत कम ऑब्जेक्शन लगाता था और जो पैसा नहीं देता था उसे वह लगातार रोके रहता था और उसकी फ़ाइलें महीनों बाद प्रस्तुत करता था।

दोनों ही उदाहरणों में यह क्लर्कों के स्तर पर चलने वाली घूसखोरी का ज़िक्र है। यह भ्रष्टाचार है।

जब भ्रष्टाचार के कारण राजनीतिक सहभागिता पर प्रभाव पड़े

सरकारी कार्यालयों में प्रचलित भ्रष्टाचार के कारण जब मतदाता-सूचियों में कमी रह जाती है, या फिर ग़लत नाम जोड़ दिये जाते हैं तो इससे मतदाता चुनाव लड़ने और चुनाव में मत देने के अधिकार से वंचित हो जाता है। इससे राजनीतिक सहभागिता पर रोक लगती है। 1999 के चुनाव के समय भारतीय चुनाव आयोग के एक आयुक्त तक इसका शिकार हुए, क्योंकि जब वे मत डालने गये तो उनका नाम मतदाता सूची में नहीं था।

इसी प्रकार सार्वजनिक सेवाओं की पहुँच भी कई बार रोकी जाती है। कई बार भाषण देने की स्वतंत्रता, विरोध प्रकट करने और आंदोलन की स्वतंत्रता पर भी कुठाराघात पुलिस द्वारा धारा-144 लगा कर दिया जाता है। सरकार के प्रति लोगों में उठने वाले विरोध और क्रोध को विराम देने वाले अधिकांश प्रयास मानवाधिकारों और संविधान में दिये गये मौलिक अधिकारों की अनदेखी करते हैं।

भ्रष्टाचार के कई आयाम हैं। उनसे जुड़े अनेक प्रश्न अभी अनुत्तरित हैं। अगर इनके इर्द-गिर्द समाजशास्त्रीय अनुसंधान और विश्लेषण न किया गया तो भ्रष्टाचार पर किया गया लेखन मात्र राजनीतिक नारेबाज़ी अथवा पत्रकारीय क़िस्म का साहसिक प्रयास बन कर रह जाएगा। इस संबंध में अभी बहुत कार्य करने की आवश्यकता है। आशा है कि मेरा यह परिप्रेक्ष्य शोध-सहायक प्रश्न उठाने में सहायक बनेगा।

संदर्भ

आर.डी. टेला और डब्ल्यू.डी. सेव्डॉफ (सम्पा.) (2001), *डायग्नोसिस करप्शन : फ्रॉड इन लैटिन अमेरिकाज़ पब्लिक हॉस्पिटल्स,* इंटर-अमेरिकन डिवेलपमेंट बैंक.

इंटरनेशनल कौंसिल ऑन ह्यूमन राइट्स पॉलिसी (2009), *करप्शन एंड ह्यूमन राइट्स : मेकिंग द कनेक्शन* आईसीएचआरीप, जिनेवा.

ए.जे. हीदनहीमर वग़ैरह (सम्पा.) (2002), *पॉलिकिल करप्शन : कंसेप्ट्स एंड टेक्स्ट्स,* ट्रांज़ेक्शन पब्लिशर्स, न्यू ब्रंसविक.

जार्ज मूडी-स्टुअर्ट (1997), *ग्रांड करप्शन : हाउ बिजनेस ब्राइब्स डैमेज डिवेलपिंग कंट्रीज़,* वर्ल्ड व्यू पब्लिशिंग कम्पनी, ऑक्सफ़र्ड.

ज़ाक हैलेक और मुरील पॉइज़ोन (2007), *करप्ट स्कूल्स, करप्ट युनिवर्सिटीज़ : व्हाट कैन बी डन ?,* यूनेस्को इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फॉर एजुकेशन, पेरिस.

टी.डी. लंकास्टर और जी.आर. मोंटीनोला (1997) 'टुवर्ड्स अ मेथॅडोलॅजी फॉर द कम्परेटिव स्टडी ऑफ़ पॉलिटिकल करप्शन', *क्राइम, लॉ एंड सोशल चेंज,* 27, अंक 3-4.

ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल (1998), *करप्शन— अ वायलेशन ऑफ़ ह्यूमन राइट्स ?,* ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल वर्किंग पेपर.

फिलिप एल्स्टन और मैरी रॉबिंसन (सम्पा.) (2005), *ह्यूमन राइट एंड डिवेलपमेंट टुवर्ड्स म्युचुअल रिइनफ़ोर्समेंट,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफ़र्ड.

माइकल जांस्टन (2005), *सिंड्रॉम्स ऑफ़ करप्शन : वेल्थ, पॉवर एंड डेमॉक्रेसी,* कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज़.

यूएनडीपी (2004), *द इम्पेक्ट ऑफ़ करप्शन ऑन द ह्यूमन राइट्स बेस्ड एप्रोच टु डिवेलपमेंट,* डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.यूएनडीपी.ओआरजी/ओस्लोसेंटर/डॉक्स05/थुशिथा-फ़ाइनल.पीडीएफ.

यूएनडीपी (2008), *प्राइमर ऑन करप्शन एंड डिवेलपमेंट,* डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.यूएनडीपी.ओआरजी/ गवर्नेंस.

रॉबर्ट मॉर्टन (1957), *सोशल थियरी ऐज़ सोशल स्ट्रक्चर,* फ्री प्रेस.

विवेक देबरॉय और लवीश भंडारी (2012), *करप्शन इन इंडिया : द डीएनए एंड द आरएनए,* कोणार्क पब्लिशर्स, दिल्ली.

सैयद हुसैन अलातास (1968), द *सोशियोलॅजी ऑफ़ करप्शन,* मूर प्रेस लि., सिंगापुर.

सूज़न रोज़ एकरमैन (1999), *करप्शन एंड गवर्नमेंट : कॉजिज़, कांसिक्वेंसिज़ एंड रिफ़ॉर्म,* कैम्ब्रिज़ युनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज.

हामिद दावूदी (2000), *करप्शन एंड द प्रोविज़न ऑफ़ हेल्थ केयर एंड एजुकेशन सर्विसिज़,* आईएमएफ वर्किंग पेपर नं. 00/116.डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.आईएमएफ.ओआरजी/एक्सटर्नल/पीयूबीएस/ डब्ल्यूपी/ 2000/ डब्ल्यूपीओओ116.पीडीएफ.